राजनीति में परिवारवाद

राजनीति शब्द का ही भावार्थ होता है कि कोई राजा होगा और कोई प्रजा। कोई शासक होगा तो कोई शासित। समाज आंशिक रुप से संचालित होता है और राज्य संचालक। प्राचीन समय में कुछ देशों में राजतंत्र था तो कुछ देशों में तानाशाही। भारत ऐसे देशों में शामिल था जहॉ राजतंत्र था। दुनियां के अधिकांश देशों में परिवारों के अंदर भी केन्द्रित शासन प्रणाली थी और समाज के अंदर भी, अर्थात् लोकतंत्र कहीं नहीं था। धीरे–धीरे पश्चिम के देशों में परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था में आंशिक रुप से लोकतंत्र आया और मजबूत हुआ। दुनियां के अन्य देशों में परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र नहीं आया। पश्चिम के देशों में धीरे–धीरे शासन व्यवस्था में भी परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था की तरह का लोकतंत्र आया। दूसरी ओर मुस्लिम देशों में पूर्ववत् स्थिति बनी रही और साम्यवादी देशों में राजतंत्र का स्वरुप बदल कर तानाशाही रुप में आ गया। भारत पूर्ववत् चलता रहा।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने शासन प्रणाली में लोकतंत्र स्वीकार किया। धीरे–धीरे दक्षिण एशिया के अनेक देशों में भारत सरीखा ही लोकतंत्र आया। किन्तु सभी जगह परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था या तो पूर्ववत् चलती रही अथवा अव्यवस्था में बदल गई। यह दुनियां का जाना माना सिद्धांत है कि जिन देशों में लोकतंत्र शासन व्यवस्था तक तो आ जाता है किन्तु जीवन पद्धति अर्थात् परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में नहीं आ पाता है वहॉ अव्यवस्था निश्चित होती है और जहॉ लम्बे समय तक अव्यवस्था होती है वहॉ समाज में तानाशाही की भूख पैदा होती है क्योंकि जनमानस समाधान को प्राथमिकता देता है अर्थात् यदि वह लोकतंत्र से आवे तो ठीक है अन्यथा वह तानाशाही से भी समाधान स्वीकार कर लेगा।

राजनीति में परिवारवाद एक बुराई है किन्तु परिवारवाद इन राजनीतिक राजनेताओं की स्वार्थपूर्ण नीतियों का परिणाम न होकर प्रदूषित लोकतंत्र का परिणाम होता है। राजतंत्र में राजा को भगवान माना जाता है और यहॉ तक प्रचारित किया जाता है कि राजा का कोई कार्य कभी गलत नहीं होता है। चूंकि भारत में परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र नहीं आया इसलिए भारत का आम जनमानस राजतंत्र की उस बीमारी से प्रभावित रहा। एक बात और विचारणीय है कि आदर्श लोकतंत्र में शासक व्यवस्थापक होता है, प्रबंधक होता है, मालिक नहीं। लेकिन भारत के लोकतंत्र में प्रबंधकों ने अपने को शासक माना और समाज ने भी उन्हें हमेशा शासक की तरह ही देखा, प्रबंधक की तरह नहीं। अर्थात् समाज शासन का मुखापेक्षी बनता गया जिसका अर्थ हुआ कि समाज अपने सारे अधिकार राज्य को देने में संतोष अनुभव करता रहा और राज्य समाज के सारे अधिकार अपने पास इक्ट्ठा करने का प्रयत्न करता रहा। इसका अर्थ हुआ कि भारत का लोकतंत्र एक प्रकार से राजतंत्र का ही एक संशोधित स्वरुप है। भारतीय जनमानस की इस सोच का ही परिणाम है कि भारतीय राजनीति में परिवारवाद पैदा हुआ, बढ़ा और इस सीमा तक आ पहुॅचा कि वह समाज के लिए एक चिंता का विषय बन गया। तीसरी बात यह भी रही कि धीरे–धीरे भारतीय राजनीति एक व्यवसाय का रुप लेती गई। व्यापार का यह नियम होता है कि वह अपने परिवार के लोगों को भी उस दिशा में प्रशिक्षित करता रहता है। भारतीय राजनीति स्वतंत्रता के प्रांरभ से ही समाज सेवा की दिशा में नहीं आई, बल्कि धन संग्रह, सत्ता संग्रह, सम्मान संग्रह की दिशा में बढ़ती चली गई। भारतीय राजनीति का यह व्यवसायीकरण भी लगातार बढ़ता रहा है और अब तक बढ़ता ही जा रहा है। मैं स्पष्ट हूॅ कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारत में परिवारवाद सोच समझकर नहीं लाया गया, किसी योजना के अन्तर्गत नहीं आया, बल्कि भारत की परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में लोकतंत्र के अभाव के परिणाम के रुप में विकसित हुआ। भारत में लम्बे समय से यह भावना फैलाई गई कि गुणों के आधार पर व्यक्ति का चयन नहीं होता है बल्कि चुने गये व्यक्ति में गुणों की उपस्थिति अनुभव की जाती है।

लोकतंत्र में परिवारवाद एक भयंकर बीमारी है उस बीमारी का लाभ उठाकर जो भी व्यक्ति आगे बढ़ने में सफल हो जाता है वह उसे अपना राजनैतिक अधिकार समझकर उसे अपने हाथ में लम्बे समय तक बनाये रखने की तिकड़म करता रहता है। वह प्रयत्न करता है कि लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई विधायिका, कार्यपालिका तथा राजनैतिक दल के प्रमुख के रुप में भी उसके पारिवारिक लोग बैठें अथवा कम से कम ऐसे लोग ही बैठें जो उसके गुलाम सरीखे काम करने वाले हों। अर्थात् संसद में अधिक से अधिक अपने परिवार के लोगों को शामिल करना, राष्ट्रपति के रुप में भी किसी गुण प्रधान के स्थान पर किसी अपने खास विश्वास पात्र को बिठाना, तथा पार्टी प्रमुख को भी अपने परिवार या विश्वस्त तक सीमित करना ऐसी तिकड़मों का भाग माना जाता है। भारत में इन सब तिकड़मों का लगातार प्रयोग बढ़ता जा रहा है। भारत में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जहॉ किसी सांसद की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी या पुत्र को स्थापित करने का प्रयास न होता हो। दूसरी ओर यह बात भी सच है कि आम जनता भी उस उम्मीदवार की योग्यता का ऑकलन करने की अपेक्षा व्यक्ति पूजा के समान उस दिशा बह जाती है

और इसका स्पष्ट कारण यह है कि भारत में परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र के स्थान पर राजशाही या तानाशाही के सारे अवगुण चल रहे है।

इन परिस्थितियों में भारतीय लोकतंत्र से परिवारवाद का छुटकारा आसान नहीं है। जब सत्ता केन्द्रित होगी तो स्वाभाविक रुप से उस परिवार के अन्य सदस्य भी बचपन से ही उस केन्द्रित सत्ता संचालन से धीरे–धीरे कुछ सीख लेंगे। यह सीख भविष्य में उन्हें पारिवारिक सत्ता स्थापित करने में मदद करती है। यही कारण है कि राजनीति में परिवारवाद एक गंभीर बुराई समझते हुए भी भारत लगातार परिवारवाद के चंगुल में जकड़ता जा रहा है। यह परिवारवाद किसी एक पार्टी की देन नहीं है, व्यक्ति की देन नहीं है, बल्कि भारतीय परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था की देन है। भारतीय राजनीति से परिवारवाद समाप्त होना ही चाहिए। यह हम आप सब समझते हैं किन्तु परिवारवाद घटने की अपेक्षा बढ़ता ही जा रहा है। यह परिणाम भी हम लगातार देख रहे हैं।

मैं इस बात से सहमत हूॅ कि राजनीति में परिवारवाद की चौतरफा निंदा होनी चाहिए। विरोध भी होना चाहिए। किन्तु मैं इस निंदा और विरोध से आगे बढ़कर परिवारवाद को पैदा होने के कारणों पर भी चोट करना चाहता हूॅ। मैं समझता हूॅ कि भारतीय राजनीति में परिवारवाद के बढ़ने के प्रमुख कारणों में एक है परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र का अभाव और दूसरा सत्ता का केन्द्रियकरण तथा व्यवसायीकरण। हम भारतीय राजनीति में परिवारवाद की निंदा और विरोध तो करें ही किन्तु साथ–साथ हम परिवार व्यवस्था में भी परम्परागत प्रणाली को लोकतांत्रिक दिशा देने का भी प्रयास करें। साथ ही हमें यह भी करना होगा कि परिवार व्यवस्था तथा गॉव व्यवस्था को संवैधानिक अधिकार मिले जिससे सत्ता कुछ व्यक्तियों तक केन्द्रित न होकर आम लोगों में विभाजित हो जाये।

पिछले एक दो वर्षो से भारतीय राजनीति मे नरेन्द्र मोदी, नीतिश कुमार सरीखे लोगों का बढ़ता प्रभाव परिवारवाद से मुक्ति की कुछ संभावना व्यक्त करता है। किन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है। सन् सतहत्तर मे भी ऐसी ही उम्मीद बनी थी। किन्तु दो तीन वर्षो मे ही वह उम्मीद समाप्त हो गयी। इसलिये वर्तमान समय ऐसा है कि हम राजनीति मे परिवारवाद कोसमाप्त करने के लिये दोनों तरफ से प्रयास करें। अर्थात ऊपर से परिवारवाद की निन्दा आलोचना भी करते रहें तथा साथ–साथ परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में भी लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयास जारी रखें।

पर्यावरण प्रदूषण और दिल्ली सरकार

भारतीय राजनीति का एक चरित्र होता है कि वह समस्याएं पैदा करती है, समाधान का नाटक करती है, और कभी समाधान नहीं होने देती। यह चरित्र सभी राजनैतिक दलों का लगभग एक समान होता है। ये राजनेता दो गुटों में बटकर सड़कों पर भी खड़े होकर आपस में इस तरह झगड़ने का नाटक करते है कि आम जनमानस उनसे धोखा खा जाता है। लेकिन यदि कभी इनके अधिकारों पर कोई संकट खड़ा हो या इन्हें अपनी सुख सुविधायें बढ़ानी हो तो सब एक जुट हो जाते हैं। इनके सारे आपसी झगड़े समाप्त हो जाते है। ये सभी किसी भी समस्या के समाधान में किन्तु परन्तु लगाकार प्रश्न खड़े करते हैं और कभी भी समाधान होने ही नहीं देते। छ0ग0 के सबसें पिछड़े क्षेत्र बस्तर, जो लगभग पूरी तरह आदिवासी क्षेत्र है, उस क्षेत्र के लिए राजनेता हमेशा एक साथ दो विरोधी बाते बोलते हैं अर्थात् बस्तर क्षेत्र का तेजी से विकास हो और अदिवासियों की मूल संस्कृति में कोई कमी न हो। स्पष्ट है कि दोनों बातें एक साथ होना असंभव है। मैंने अच्छे–अच्छे राजनेताओं को योजना बनाने में दो विपरीत प्राथमिकताओं पर पहल करते सुना है। ये गर्मी के दिनों में बोलते है कि आम आबादी को अधिक से अधिक नदियों के किनारे बसना चाहिए, दूसरी ओर यही नेता बरसात के दिनों में कहते है कि आम आबादी को नदियों से दूर बसना चाहिए। ऐसे ही वातावरण में देश के अनेक बुद्धिजीवियों ने अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व में आदर्श राजनीति का सपना देखा और ऐसा सपना देखने वालों में मैं भी एक था।

अरविंद जी आदर्श राजनैतिक व्यवस्था का सपना लेकर सत्ता में आये। किन्तु सत्ता में जाते ही वे लगभग उस राजनैतिक विरादरी की भाषा बोलने लगे जो अन्य राजनेताओं की भाषा थी। पर्यावरण प्रदूषण दूर करने के लिए साईकिल चलाने का नाटक करना, कार फ्री डे घोषित करना अथवा ऑड ईवन नम्बर की कार चलाने की छूट देना, यहां तक कि पंद्रह दिनो के लिये प्राथमिक स्कूल बंद करने तक का नाटक लगातार किया जा रहा है और ऐसे नाटक के प्रथम मूलाधार अरविंद केजरीवाल ही दिख रहे हैं। मुझे समझ में नहीं आ रहा कि अरविंद केजरीवाल जी लम्बे समय से बात अच्छी तरह समझते रहे हैं कि पर्यावरण प्रदूषण के लिए ये सड़कों पर दौड़ती हुई गाड़ियॉ ही विशेष रुप से जिम्मेदार हैं किन्तु वे यह भी अच्छी तरह से समझते रहे हैं कि इन गाड़ियों की रफ्तार और संख्या कम करने का एक मात्र समाधान आर्थिक ही हो सकता है, सामाजिक या कानूनी नहीं। सब जानते है कि दिल्ली में करीब 60–70 लाख वाहन प्रतिदिन चलते हैं। इन वाहनों पर प्रतिदिन इतना शुल्क लगा दिया जाये कि उनकी संख्या

सड़क पर अपने आप कम हो जाये तो यह सबसे आसान तरीका है। अधिकांश लोग महिने भर का एक साथ भी टैक्स पटा देंगे। इस पर्यावरण शुल्क से प्राप्त बड़ी धनराशि हम आधी कमजोर आबादी को नगद पर्यावरण मुआवजा के रुप में दे सकते हैं। हम यदि कारों को रोककर सार्वजनिक वाहन को भी प्रोत्साहन देना चाहें तो हम उक्त धन द्वारा सार्वजनिक वाहनों का किराया घटाकार कार और सार्वजनिक वाहन के बीच अंतर बहुत बड़ा कर सकते हैं। यह बात बहुत आसान है। वैसे तो इससे भी अच्छा तरीका यह है कि डीजल, पेट्रोल का मुल्य ही बहुत बढ़ा दिया जाये जिससे इनकी खपत भी घट जाये और पर्यावरण प्रदूषण भी कम हो जाये किन्तु डीजल, पेट्रोल मुल्यवृद्धि अकेले दिल्ली शहर नहीं कर सकता। दूसरी ओर अरविंद जी कुछ वामपंथ की तरफ भी झुके रहे हैं तथा विदेशी पूँजीपतियों से भी अच्छा संपर्क रहा है और ये दोनों ही डीजल, पेट्रोल की मुल्यवृद्धि नहीं होने देंगे। किन्तु दिल्ली शहर अकेला अपने क्षेत्र में चलने वाले वाहनों पर भारी पर्यावरण शुल्क तो लगा सकता है। यह बात और कोई चाहे जाने या न जाने लेकिन अरविंद केजरीवाल अच्छी तरह जानते भी है और मानते भी है किन्तु करते नहीं।

मैंने कई टी0वी0 चैनलों में पर्यावरण पर दिल्ली सरकार के प्रयोगों पर बहस सुनी। बहस में एक बार श्री अभय दुबे का एक ऐसे टैक्स का सुझाव सुनाई दिया। किसी भी और प्रतिभागी ने कभी भूलकर भी यह बात नहीं कहीं। अभय दुबे को लम्बे समय से ध्यान से सुनता आ रहा हूँ। वे किसी भी विषय पर बहुत संतुलित बोलते हैं और अपनी मर्यादाओं का ख्याल रखते हैं। किन्तु किसी भी अन्य प्रतिभागी द्वारा एक बार भी इस बात को चर्चा में न उठाना संदेह पैदा करता है कि क्या ये मिडिया में बहस करने वाले भी उसी राजनैतिक चरित्र के हिस्से हैं जो नाटक भारत का आम राजनेता करता रहता है।

मैं पिछले कुछ दिनों से राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की भी बेसिर पैर की उछलकूद देख रहा हूँ। कभी भी कोई भी आदेश पारित कर देना कोई अच्छी आदत नहीं होती। हरित प्राधिकरण ने अब तक जो आदेश दिये उनमें एक आदेश अच्छा था कि बाहर से आने वाले ट्रकों पर भारी शुल्क लगाया जाये। इसके अतिरिक्त उसके अन्य सभी आदेश समस्यायें पैदा करने वाले हैं, समाधान के नहीं। क्या यह उचित नहीं होता कि हरित प्राधिकरण और दिल्ली सरकार अलग–अलग एक दूसरे को आदेश देने की अपेक्षा एक साथ बैठकर कोई निष्कर्ष निकालते। यदि ऐसा होता तो लोगों में एक अनिश्चितता नहीं पैदा होती। मुझे तो कभी–कभी ऐसा भी महसूस होता है कि अपना वेतन कई गुना बढ़ाये जाने की चर्चा से ध्यान हटाने के लिए ही यह पर्यावरण की बहस छेड़ी गई हो। अन्यथा यदि गाड़ियों का उपयोग घटाने का आर्थिक और प्राकृतिक समाधान है तो इतना विवादास्पद प्रयोग करने के पीछे कोई न कोई मन्शा जरुर रही होगी। मैं यह समझता हूँ कि दिल्ली की सड़को पर अंधाधुंध गाड़ियों की बढ़ती संख्या घटनी चाहिए। इससे प्रतिदिन होने वाले जाम से भी मुक्ति मिलेगी, प्रदूषण भी घटेगा तथा अन्य प्रकार की अनेक समस्याएँ भी कम होंगी। किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं कि बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण को अपने नाटक करने के लिए मंच का उपयोग किया जाये। मैं समझता हूँ कि चाहे कोई और समझे या न समझे किन्तु अरविंद केजरीवाल जी मेरी भावना को समझेंगे।

भारतीय राजनीति में संभावित आश्चर्य

बहुत लम्बें समय से यह अनुभव किया जा रहा था कि छ0ग0 के मुख्यमंत्री रमन सिंह का अजीत जोगी द्वारा किया जाने वाला कटु विरोध रमन सिंह की जीत में सहायक होता है। मैं छ0ग0 का ही निवासी हूँ और निकट से राजनीति देखता रहा हूँ। दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं कि छ0ग0 में अजीत जोगी के पास किसी भी सीमा तक उनके प्रति वफादारी निभाने लायक कार्यकर्ताओं की बड़ी फौज है। दूसरी ओर अजीत जोगी से छ0ग0 का सम्पूर्ण सवर्ण मतदाता घृणा करता है, और अब भी छ0ग0 के अवर्ण मतदाताओं पर सवर्णो का निर्णायक प्रभाव है। लेकिन मुझे रत्ती भर भी यह विश्वास नहीं था कि अजीत जोगी और रमन सिंह के बीच इस तरह का संबंध रहा है जैसा टेप से उद्घाटित हुआ। मैं इसे एक आश्चर्य ही मानता हूँ। राजनीति में ऐसा आमतौर पर होता रहा है फिर भी अजीत जोगी और रमन सिंह का संबंध उस आमतौर की घटनाओं से बहुत आगे का आश्चर्य माना जा रहा है।

अब तो मुझे एक नये आश्चर्य की संभावना दिखने लगी है। दुनियां जानती है कि भारत की शिवसेना, पाकिस्तान सरकार के भी विरुद्ध है और पाकिस्तानी आतंकवाद के भी। पिछले दिनों मोदी ने आतंकवाद के विरुद्ध पाकिस्तान से दोस्ती का हाथ बढ़ाया। सारे देश ने प्रशंसा की, शिवसेना को छोड़कर। पाकिस्तान में भी इस दोस्ती को व्यापक समर्थन मिला, कुछ घोषित आतंकवादियों को छोड़कर। स्पष्ट है कि पाकिस्तान के आतंकवादी और भारत की शिवसेना किसी भी रुप में दोनों के बीच आतंकवाद के विरुद्ध एकजुट मित्रता नहीं होने देना चाहते थे। पाकिस्तान के आतंकवादियों ने पाकिस्तान सरकार को मजबूर किया और शिवसेना भारत सरकार को मजबूर कर रही

है। आतंकवाद की घटनायें वैसे तो सम्पूर्ण विश्व के देशों में घटित हो रही है और अधिकांश में मुस्लिम आतंकवादियों का हाथ पाया जा रहा है और उनमें भी सबसे अधिक पाकिस्तान के आतंकियों का। किन्तु भारत आतंकवाद से अधिक प्रभावित है। कश्मीर में भी, और अफगानिस्तान में भी। यह स्पष्ट है कि आतंकवाद और भारत के बीच पाकिस्तान एक विचौलिए के रुप में है। प्रश्न उठता है कि हम नेपाल, श्रीलंका सरीखे छोटे–छोटे बीच के देशों से अच्छा संबंध बनाकर रखना चाहते हैं जिससे कि वे देश हमारे प्रतिस्पर्धी बड़े देशों के साथ न जुड़ जावें। यहॉ तो मुस्लिम आतंकवाद भारत सहित आसपास के अनेक देशों के लिए शत्रु के रुप में स्थापित है। ऐसे आतंकवाद से टक्कर लेने के लिए हम विचौलिए देश पाकिस्तान को आतंकवाद की तरफ जाने के लिए मजबूर कर दें या आतंकवाद और पाकिस्तान के बीच एक संदेह की दीवार खड़ी करें। मैं समझता हूॅ कि नरेन्द्र मोदी ने ऐसी दीवार खड़ी करने में सफलता पायी। किन्तु भारत की शिवसेना और पाकिस्तान के आतंकवादी एक साथ मिलकर इस प्रयत्न को नाकाम करने में जुट गये। मुझे तो एक असत्य संदेह होता है कि कभी भविष्य में ऐसा भेद भी न खुल जाये जैसा रमन सिंह अजीत जोगी के बीच का खुला, शिवसेना पाकिस्तानी आंतकवादियों का खुल जायें।

प्रश्नोत्तर

1.शिवदत्त बाघा,बांदा ज्ञानतत्व–174080

प्रश्नः–सरल सहज मानव जीवन को जटिलताओं, की भूल भुलइयां में उलझाने का काम उसकी आशा आकांक्षा और अपेक्षा के विपरीत उन्होंने किया जिन्हें मानव समाज ने अपनी भलाई का हेतुक माना और अपनी अपेक्षा कहीं अधिक सम्मान दिया। अब इस सम्मानित वर्ग की यह बात आदत में शुमार हो चुकी है। देश दुनियां की आबादी, जन सामान्य को उलझाए रखना, भयभीत रखना, अभावग्रस्त बनाए रखना, प्रताडित रखना और इन पर अपनी मर्जी चलाना, हुकूमत करना तथा मुफ्त में माल उड़ाना सुख सुविधाएॅ लूटना, ऐश करना, ऐसी आदतों में शामिल हैं।

यह सुविधा भोगी वर्ग आखेटक और धरती की शेष आबादी आखेट। यह सारे सिस्टम और व्यक्ति तथा समाज के बीच के रिश्ते की वास्तविक लाइन है। कोई भी व्यवस्था वह चाहे साम्राज्यवादी हो, राजतांत्रिक हो या कि लोकतांत्रिक इस लाइन को नहीं छोड़ सकती। थोड़ा बहुत इधर–उधर झुकने की बात और है। अर्थ यह है कि जनता की अपेक्षाएं यानी सुरक्षा, शान्ति, आय संतुलन और अवसरों की सुलभता की पूर्ति की आशा सदा–सदा मृग मरीचिका बनकर उसका दम तोड़ते रहेंगे, तथा जीवन की सुगंध की आशा में वह दुर्गंध की दिशा में ही चलने के लिए विवश किया जाता रहेगा जिसे उसका कल्याण बताया जाएगा। पंचायत चुनावों को लेकर यूपी में खून की होली चल रही है किन्तु कोई चुनाव के तरीके को बदलने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि सम्मानित वर्ग को इससे लाभ मिल रहा है, कोई मरता है तो मरे।

आज देश एक और ऐसे ही मुद्दे में उलझा हुआ है। कोई पक्ष में कोई विपक्ष में। मुद्दा है आरक्षण का। यह आरक्षण उसी तरह का एक गूढ शब्द है जैसे धर्मनिरपेक्षता। यह आरक्षण है क्या? इस पर चर्चा नहीं होती, जबकि इसका सीधा सपाट अर्थ है किसी को ''पासआन'' और किसी को '' बिक आफ''। यह कोई इस धरती का नया खेल नहीं है। यह वर्ण व्यवस्थात्मक चरित्र व सामंती खेल है जो सदियों–सदियों से चलता आ रह है। हम करोड़ों–करोड़ों वर्षो से सामंती समाज हैं फिर हम, हमारा समाज, हमारा राजनीतिक वर्ग, इससे भिन्न कुछ और सोच भी कैसे सकता है, लीक लाइन से हटकर वह जा भी कैसे सकता है। स्वभावतः हम सब ढोंगी हैं इसीलिए हम अपना चेहरा छुपाते हैं और सच्चाई को स्वीकार करने में घबडाते हैं।

अंग्रेज दुनिया की बुद्धिमान कौम है ऐसा स्वीकार करने में मैं कोई हर्ज नहीं देखता। ये भारत में मुसलमानों की तरह आक्रमणकारी बन कर नहीं आए थे वरन् व्यापारी बनकर आए और यहॉ के सामाजिक भेदभाव, जातिवादी समाज तथा इस्लामिक राज्य के उत्पीड़न इतिहास का अध्ययन किया, समझे बूझे और उसी का फायदा उठाकर अंग्रेज व्यापारी भारत के शासक बन गए। यह कोई संत कौम नहीं जो राग द्वेष लोभ लालच पद पैसे की खोज से मुक्त हो। भारत से विदा होते–होते उन्होंने भारत में व्याप्त या कहिए भारतीय समाज में व्याप्त उन्हीं बुराईयों को और गहराई दी जिनसे उन्हें सत्ता सुख की प्राप्ति हुयी थी। आरक्षण के प्रावधान को प्रेरणा देकर अंग्रेजों ने जातिवाद को स्थायी रुप से और अधिक गहराई दी। आरक्षण और कुछ नहीं है टाईमबम है जो समय के साथ लोकतंत्र को उठाकर जातिवादी वर्चस्व की जंग शुरु करा देगा।

2.मुकेश कुमार ऋषिवर्मा, रिहावली, फतेहाबाद ,आगरा ज्ञानतत्व–123042

प्रश्नः—16 से 30 नवम्बर के अंक में पृष्ठ संख्या 29–30 पर श्री ओमप्रकाश मंजुल जी से मैं शत् प्रतिशत सहमत हूँ। परन्तु उन्होंने लिखा कि बाबा साहेब का अंत कैसा था? बेशक बुरा रहा हो, किन्तु मंजुल जी की यह बात पूर्णतः गलत है। और आप सब की जानकारी के लिए बता दूँ कि एस.सी., एस.टी., ओ.बी.सी., जनरल सभी वर्ग गॉवों में मिल जुल कर रह रहे हैं। टी.वी. पर जो खबरें आती है,उन्हें तोड़ मरोड़ कर दिखाया जाता है।

रही बात हरिजनों की तो वे अपनी सीमा में रहेंगे तो सम्मान भी पायेंगे। बुद्ध हिन्दू धर्म का ही एक अंग है। सभी बौद्ध हिन्दू मानते हैं पर अब हरिजन हिन्दूधर्म की बुराई करने लगे हैं और यह सही नहीं है। बेहतर होगा सभी वर्ग मिल जुल कर रहें और एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करें।

3.दिनेश शास्त्री, 427 नया बांस,दिल्ली ज्ञानतत्व—499028

प्रश्नः—ज्ञानतत्व का अंक 325 मेरे सामने है। मैंने उसे पढ़ा है। पृष्ट 13 से 23 तक आरक्षण पर काफी विस्तृत चर्चा हैं, जिसका आपने पृष्ठ 24 से पृष्ठ 30 तक युक्तियुक्त उत्तर दिया है।

मैं भी अपने कुछ कटु किन्तु सत्य अनुभव आपके साथ बांटना चाहता हूँ—

1. मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है, उसे जहॉ स्वार्थ पूरा होता दिखाई देता है, उधर ही चल देता है। मैं एक से अधिक लोगों को जानता हूँ जिनको आर्य समाज ने पंडित बनाया। केवल नाम के लिए नहीं, उसी रुप में उन्हें सम्मान भी दिया पर सरकारी सेवा पाने के लिए उन्होंने अपने जन्म से निम्न वर्ग का लाभ लेने में कोई संकोच नहीं किया और मजे की बात ये भी कि वे अपने आप को पंडित भी कहते/ कहलाते रहे।
2. एक ऐसे ही पंडित ने तो और भी कमाल कर दिया। अपने वैचारिक विरोधी को परेशान करने के लिए हरिजन एक्ट के तहत असत्य, सर्वथा असत्य, मुकदमा कर दिया और कोई भी लज्जा या ग्लानि अनुभव नहीं की। ये महापुरुष भी अपने को पंडित/ शास्त्री/आचार्य कहते हैं/ लिखते हैं।
3. मेरी जन्मभूमि से लगता एक आरक्षित विधानसभा क्षेत्र है, जहॉ से प्रायः एक परिवार का ही सदस्य विधायक बनता आ रहा है। पहले उसके पिताजी बनते थे अब पुत्र बन रहे हैं। कहने का अर्थ यह है कि आरक्षण ने केवल एक परिवार का ही भला किया, बाकी लोग लगभग वैसे ही हैं, जैसे कि वर्षों पूर्व थे।
4. आपने पृष्ठ 20 पर जो तथ्य रखे हैं, उनकी पुष्टि के लिए एक मजेदार अनुभव साझा करना चाहता हूँ। बात उन दिनों की है, जब मैं गुरुकुल झज्जर में था। झज्जर के एक सज्जन गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर सफेदी का कार्य किया करते थे। उनकी आर्थिक स्थिति थोड़ी कमजोर थी। उन्होंने अपनी सुन्दर सुशील थोड़ी पढ़ी लिखी भी कन्या के लिए वर तलाशने की बात कही तो मैंने अपने गॉव में उनके वर्ग में ही चर्चा चलायी और उनके हॉ करने पर मैं अपने व्यय पर उन्हें गॉव लेकर गया। उनकी आमने सामने बात करायी तो मैं अपना माथा पीटने पर मजबूर था क्योंकि दोनों पक्ष अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा बताते थे, जबकि दोनों जुलाहे ही थे। मुझे लोभ ये था कि एक पढ़ी लिखी समझदार लड़की गॉव में आएगी तो कुछ सुधार ही होगा। आप विश्वास करना, अंत में मैंने उन्हें अपने परिवार में भी रिश्ता करने का प्रस्ताव दिया, जिसे उन्होंने सिर से ही नकार दिया। हालॉकि मुझे ये स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि ये सब मेरे लिए भी बहुत आसान नहीं रहता।

और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है। आज तो जातिगत समस्या न के समान है इसे समस्या तो नेताओं ने बना रखा है। अन्यथा तो हम देख रहे है कि एक चिकित्सक को जीवन संगी/जीवनसंगिनी भी चिकित्सक ही चाहिए और अध्यापक को अध्यापिका और अध्यापिका को अध्यापक चाहिए किसान के बेटे को एक किसान की बेटी अधिक अनुकूल लगती है।

अंत में एक बात और भी वो ये कि मैं गुरुकूल में बीसियों वर्ष रहा पर एक दूसरे की जन्म जाति जानने की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई।

4. श्री ओमप्रकाश मंजुल, बरेली, उ0प्र0, ज्ञानतत्व—166006

प्रश्नः—आपने आरक्षण विषय पर एक विस्तृत लेख लिखा, जिसमें आपने अनेक आंकड़े दिये है। जो असत्य भी दिखते है और अविश्वसनीय भी। आपने पूरे भारत की कुल आबादी में औसत स्तर से ऊपर जा चुके अवर्णो की संख्या का अनुमान करीब तीन लाख परिवारों का बताया जो सही नहीं लगता। आपने यह भी लिखा कि किसी भी विचारक को विचार देते समय विकल्प भी देना चाहिए। यह भी मुझे उचित नहीं लगा। मैं देख रहा हूँ कि आप बिना आंकड़े और बिना विकल्प के बिल्कुल आगे नहीं जाते। हो सकता है कि यह आपकी आदत बन गई हो। आपने मेरे

लिए धूर्त शब्द का प्रयोग किया। यदि मेरा काम अनावश्यक शब्दों के बिना भी चल सकता था, तो मैं नहीं समझता कि मेरे लिए यह शब्द उपयोग कितना आवश्यक था।

5 चितरंजन भारती पंचग्राम, आसाम ज्ञानतत्व 1015

प्रश्न– ओम प्रकाश मंजुल का पत्र पढते वक्त मैं विस्मित था कि आपने क्या सोचकर इसे पत्रिका मे स्थान दिया है। अंततः आपका उत्तर पढकर मंतब्य स्पष्ट हो गया कि वे बार बार आपको पत्र लिखकर, फोन कर कर के, आपको उत्तेजित होने के लिये उकसाते रहे। वे इसमे सफल भी रहे कि अंततः आपने संयत भाषा के बजाय कठोर शब्दो का इस्तेमाल किया, जिसे किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं कहा जा सकता।

अपने सवर्णवादी सोच को मंजुल जी ने अभिव्यक्ति देकर स्वयं को बेनकाब कर दिया तो आपने भी उसे पूरी तरह अंत्यपरीक्षण कर बता दिया कि आप लोगों का सोच किस तरह से सड़ा हुआ और संकीर्ण है।

मै भी आप ही की तरह आरक्षण के विरूद्ध हूँ। पर इस प्रकार के संकीर्ण विचारों को देख कर इस पर पुनःविचार का मन करता है। उन्होने कुछ आपत्तिजनक बातें कहीं। इसपर आपने प्रतिशत मे बता दिया कि सवर्ण अवर्ण घरों में नौकरानी कौन है, अभद्र शब्दो के उच्चारणकर्ता सवर्ण अवर्णो का प्रतिशत क्या है।

रक्त संबंध और डी एन ए संबंधी मंतब्यों को देख चकित रह गया। मंजुल जी जैसे सोचवाले लोग अगर यही रवैया रखे रहे तो आरक्षण खत्म क्या होगा, वो और बढेगा ही। और इसके लिये उन लोगो का यह लिखित वक्तब्य ही जिम्मेदार होगा कि 67 वर्ष बाद भी मानसिकता वही की वही है।

उत्तर:–पूरी दुनिया में समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिए राजनीति आठ आधारों का उपयोग करती है–––

(1)संचालक और संचालित के बीच दूरी लगातार बढ़ती रहे।
(2)निष्कर्ष निकालने में विचार मंथन की जगह, विचार प्रसार का अधिक प्रभाव हो।
(3)वैचारिक मुद्दो की जगह भावनात्मक मुद्दों पर बहस बढ़े।
(4)मानव स्वभाव, स्वार्थ वृद्धि होती रहे।
(5) मानव स्वभाव तापवृद्धि भी होती रहे।
(6)राजनीति और समाज सेवा का व्यवसायीकरण हो जाये।
(7)भौतिक पहचान कठिन हो जाये।
(8)समाज टूटकर वर्ग में बदल जाये।

पूरी दुनिया के राजनेता पूरी ईमानदारी से आठों आधारों पर सक्रिय रहते हैं। भारत में भी इसी तरह चल रहा है। इन आठ आधारों में से विचार मंथन को निरुत्साहित करके विचार प्रसार को महत्व देना भी एक प्रमुख आधार है।

ज्ञानतत्व पाक्षिक पूरी दुनिया में एक ऐसी पत्रिका है जो लीक से हटकर विचार मंथन को निरंतर प्रोत्साहित करती है। ज्ञानतत्व में कोई साहित्य नहीं रहता, न ही निष्कर्ष निकले हुए विचारों का प्रचार प्रसार होता है। ज्ञानतत्व सिर्फ एक ही दिशा में सक्रिय रहता है कि पूरी दुनियां में जो असत्य सत्य के समान प्रचलित और स्थापित है उसे विचार मंथन के द्वारा चुनौती दी जाये। अभी तक दुनियां में, और विशेषकर भारत में, यह बात प्रचारित की गई है कि विचार तो बहुत हो चुका किन्तु कार्य नहीं हो रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि कार्य तो बहुत हो रहा है किन्तु विचार नहीं हो रहा। विपरीत निष्कर्षो पर अलग–अलग गुट सक्रिय होकर यदि आपस में टकराते है तो उसे विचार मंथन का अभाव माना जाये या सक्रियता का। प्रतिदिन ही ऐसी घटनाएँ देखने सुनने को मिलती रहती है। इसलिए हमारी यह प्राथमिकता है कि सक्रियता और विचार मंथन के बीच संतुलन होना चाहिए, जो अभी नहीं है। हमारे कई साथी यह मानते हैं कि विचार प्रस्तुत करते समय विकल्प देना आवश्यक नहीं है। मेरा ऐसा मानना है कि दो विपरीत विचारों के बीच किसी एक का विरोध तब तक दूसरे का अप्रत्यक्ष समर्थन है जब तक आप कोई तीसरा विकल्प न दें। या तो आप किसी एक पक्ष के पक्ष में अपनी बात लिखें या कोई विकल्प दें, तभी आपका लेखन ईमानदार कहा जा सकता है अन्यथा यह माना जायेगा कि आप लिखने में ईमानदार नहीं हैं। 1991 के बाद भारत की अर्थव्यवस्था के परिणामों की आलोचना की जाये और न तो उसके पूर्व का समर्थन हो, न ही कोई तीसरा विकल्प दें, तो ऐसा लेखन ईमानदार नहीं माना जा सकता। पूँजीवाद का विरोध अप्रत्यक्ष रुप से साम्यवाद का समर्थन है किन्तु आमतौर पर भारत में पूँजीवाद का विरोध होता है और कोई विकल्प नहीं दिया जाता। साथ ही लेखक स्वयं को साम्यवाद के समर्थन में खड़ा भी नहीं दिखना चाहता। ऐसी ही स्थिति लोकतंत्र और तानाशाही के बीच भी है। ज्ञानतत्व लोकतंत्र को असफल मानता है किन्तु तानाशाही को तो बिल्कुल ही गलत मानता है और

विकल्प के रुप में सहभागी लोकतंत्र या लोकस्वराज्य को प्रस्तुत करता है। इसी तरह विकास प्रथम या पर्यावरण इस प्रश्न पर भी ईमानदार चर्चा का अभाव है। हमारा मानना है कि विकास पर्यावरण की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु दोनों को एक साथ भी प्राप्त किया जा सकता है। दिल्ली में राजनेता दोनों दिशाओं में अलग–अलग प्रयोग कर रहे हैं। इसी तरह पारम्परिक परिवार या आधुनिक परिवार व्यवस्था पर भी हम एक तीसरा विकल्प प्रस्तुत करते हैं। अब यदि कोई लेखक आधुनिक परिवार या पारम्परिक परिवार में से किसी एक के विरुद्ध लेख लिखे और न तो दूसरे का समर्थन करे, न ही कोई विकल्प दे तो आप बताइए कि ऐसे लेखन को निष्पक्ष कैसे माना जाये। मैं पूरा प्रयास करता हूँ कि मेरे विचार बिल्कुल स्पष्ट हों, भ्रम मूलक न हों। मेरा पूरा प्रयत्न रहता है कि यदि किसी स्थिति का विरोध करता हूँ तो उसका या तो विकल्प दूँ या दूसरे पक्ष के समर्थन में खड़ा दिखूँ।

किसी भी वर्ग को विशेष अधिकार देना उस वर्ग के धूर्त लोगों को प्रोत्साहन का पुरस्कार माना जाता है। वर्ग को विशेष अधिकार हमेशा दुरुपयोग के ही काम आता है। विशेष अधिकार का शरीफ लोगों को बहुत मामूली लाभ होता है और धूर्त लोगों को बहुत अधिक लाभ होता है। लेकिन शरीफ लोगों के नाम पर धूर्तो को यह पुरस्कार बहुत समय से चल रहा है और आज भी जारी है। आज भारत में धूर्तता अपने चरम पर होने का एक प्रमुख कारण यह है कि समाज को अनेक वर्गो में बॉटकर उसमें कमजोर वर्गो को विशेष अधिकार देने की भूल या चालाकी की गई। अधिकार तो किसी भी परिस्थिति में सबके समान ही होने चाहिए, भले ही हम परिस्थिति अनुसार किसी व्यक्ति को विशेष सुविधा क्यों न दें। सुविधा देना प्राप्त करने वाले के प्रति एहसान होता है, और अधिकार देना इसके ठीक विपरीत। किसी भी प्रकार का आरक्षण भी धूर्तो की धूर्तता का एक हथियार होता है।

मैं किसी भी प्रकार के आरक्षण के पूरी तरह विरुद्ध रहा हूँ चाहे वह स्वतंत्रता के पूर्व का सामाजिक आरक्षण हो अथवा स्वतंत्रता के बाद का, संवैधानिक आरक्षण। आरक्षण व्यवस्था का उपयोग बुद्धिजीवियों ने श्रम शोषण के उद्देश्य से शुरु किया। यह अलग बात है कि स्वतंत्रता के पूर्व सिर्फ सवर्ण बुद्धिजीवी ही इसका उपयोग करते थे, और स्वतंत्रता के बाद अम्बेडकर जी की कृपा से कुछ अवर्ण बुद्धिजीवी भी श्रम शोषण में शामिल हो गये। उद्देश्य दोनों का एक था और उद्देश्य अम्बेडकर जी का भी एक ही था कि आरक्षण का राजनैतिक लाभ उठाया जाये। यही कारण है कि वर्तमान राजनेता, चाहे वह किसी भी राजनैतिक दल का क्यों न हो, आरक्षण का पूरी तरह समर्थन करता है। साथ ही वह राजनैतिक स्वार्थ के लिए इतना अच्छा हथियार उपलब्ध कराने वाले डॉ0 अम्बेडकर भी भगवान के समान मानता है। मैं तो प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि कब डॉ0 अम्बेडकर के कृत्यों की सच्चाई सामने आयेगी, और उन्हें खलनायक के रुप में माना जायेगा।

जो भी व्यक्ति वर्तमान आरक्षण का बिना विकल्प दिये समर्थन करता है उसके लेखन को भी मैं स्वार्थ पूर्ण मानता हूँ। आपने तामगाडगे जी के कई प्रश्नों के मेरे उत्तर पढ़े होंगे। इसी तरह यदि कोई विद्वान बिना विकल्प दिये आरक्षण का विरोध करता है तो उसे भी मैं स्वार्थपूर्ण ही मानता हूँ। मंजूल जी को दिया गया उत्तर भी उनमें से ही एक है। आरक्षण रहे या न रहे यह प्रश्न तब तक बेमानी है जब तक इसके बदले में श्रम के साथ न्याय का कोई मार्ग न निकले। बुद्धिजीवी शोषण से प्राप्त लाभ के बटवारे में विवाद करें तो वह उनका आपसी झगड़ा है, सामाजिक नहीं। स्वतंत्र विचारकों को शोषित श्रमजीवियों की चिंता पहले करनी चाहिए या बुद्धिजीवियों की यह उनके सोचने का विषय हैं। बुद्धिजीवी केवल बुद्धिजीवियों की चिंता करें और श्रम के साथ अन्याय होने दें ऐसा लेखन ईमानदार नहीं कहा जा सकता। मैंने कई बार लिखा कि श्रम मूल्य वृद्धि के लिए कृत्रिम उर्जा का मूल्य ढाई गुना कर देना चाहिए, तथा साथ ही आर्थिक असमानता कम करने के लिए उपरोक्त सारा प्राप्त पैसा आधी गरीब आबादी को बराबर–बराबर बॉट देना चाहिए। आज तक न तामगाडगे जी ने इस मुद्दे पर कोई प्रश्नोत्तर रखा न ही मंजुल जी ने। क्योंकि दोनों का उद्देश्य श्रम के साथ न्याय के लिए नहीं जुड़ा था बल्कि संचित लाभ के न्याय संगत बटवारे के उद्देश्य से था। मेरे कुछ सीमित साथियों को छोड़कर अन्य अधिकांश साथी भी इस मामले में चुप हो जाते है। मेरे एक राजनैतिक मित्र हमेशा सम्पत्ति की अधिकतम सीमा की तो बात उठाते हैं, किन्तु कभी श्रम की मांग और मूल्य बढ़े इस पर चर्चा नहीं करते। राजनेताओं की या सत्ता की शक्ति, सुविधा, सम्मान घटे इस पर भी कोई चर्चा नहीं करते। यहॉ तक कि सम्पत्ति की एक सीमा बनाकर अप्रत्यक्ष रुप से सत्ता को और अधिक शक्ति सम्पन्न बनाने की वकालत करते है। बताइये कि मैं ऐसे घनिष्ट मित्र के बात कैसे सुनूँ। मैं बचपन से ही आर्य समाज से जुड़ा रहा। बचपन से ही मुझे कुछ सवर्णो के अपमान की पीड़ा का अनुभव झेलना पड़ा। मेरे बचपन के कालखण्ड में अधिकांश सवर्ण अवर्णो को अछूत समझते थे नीच नहीं। आज मुझे ऐसा लगता है कि एक दो प्रतिशत अवर्ण धूर्तो का व्यवहार देखकर अछूत की जगह नीच तक समझने की बात सामने आने लगी है। मुझे बचपन से ही इस बात का पुरा विश्वास रहा कि सवर्ण और अवर्ण के विवाद का सबसे अच्छा समाधान आर्य समाज द्वारा बताया गया मार्ग

ही था। बाद में इसी मार्ग पर गॉधी भी चलते दिखे। आज भी ऐसा दिखता है कि समान नागरिक संहिता इस विवाद का समाधान बन सकती है किन्तु इसके लिए कोई भी राजनेता किसी भी परिस्थिति में तैयार नहीं। यहॉ तक कि संघ परिवार के लोग भी तब तक समान नागरिक संहिता की बात कर रहे है जब तक उसका विरोध हो रहा है। यदि मुसलमान और अवर्ण ऐसी मांग करने लग जायें तो संघ परिवार को समान नागरिक संहिता को छोड़कर हिन्दू राष्ट्र की दिशा में जाने में एक सेकेण्ड भी देर नहीं लगेगी।

शिवदत्त जी ने जो भी लिखा है उससे मैं पूरी तरह सहमत हूॅ। कुछ बुद्धिजीवियों ने योजना पूर्वक प्रबंधक के विचार को शासक और शासित की सीमा तक बढ़ाया। इस सीमा विस्तार में उन्हें लाभ भी मिला, सम्मान भी मिला। अन्य बुद्धिजीवियों ने इस विचार का विरोध नहीं किया और उसका परिणाम आज हम देख रहे है जैसा शिवदत्त जी ने अपने विचार में लिखा है। आरक्षण की बात अंग्रेजो ने उठाई और वैसे भारतीय अंग्रेजो ने उसे स्वतंत्रता के बाद आगे बढ़ाया। कभी नहीं सोचा गया कि यह आरक्षण समाधान नहीं बल्कि समस्या का विस्तार है। यह आरक्षण जातिवाद को स्थाई रुप देने का माध्यम है। इस आरक्षण ने समाज में वर्ग समन्वय को वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष तक बढ़ाया। सच बात यह है कि इस वर्ग संघर्ष में भी सत्ताधीशों को पर्याप्त आनंद आया क्योंकि इसके आधार पर उन्हें दोनों वर्गो के बीच पंच और निर्णय कर्ता बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आज भी हमारे सभी राजनेता इसी चरित्र का अनुपालन कर रहे है। मुकेश वर्मा जी ने हरिजनों को सीमा में रहने की सलाह दी। मैं यह नहीं समझा कि ऐसी सीमा रेखा सिर्फ हरिजनों के लिए ही क्यों? क्या हरिजनों में सवर्णो की अपेक्षा अधिक संख्या में अपराध कर्मी हैं? यह भी तय करना होगा कि ऐसी सीमा रेखा कौन बनाएगा? मैं समझता हूॅ कि यह बात अर्थहीन है। भारत में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए सीमा रेखा भी समान हैं। चाहे वह हरिजन हो या बौद्ध, या कोई अन्य। आज यदि ऐसी समानता में कोई कमी है तो वह कमी दूर की जानी चाहिए, न कि किसी एक वर्ग को प्रोत्साहित किया जाये।

मंजुल जी ने आंकड़ो की बात उठाई है। मैं यह स्पष्ट कर दूॅ कि मैं बिना स्वतः अनुभव किये कम्पयुटर से निकालकर किन्ही आकड़ो का कभी प्रयोग नहीं करता । मैं जानता हूॅ कि ऐसे अनेक असत्य आंकड़े हवा में तैरते रहते हैं। मैंने तीन लाख मात्र परिवारों को लाभ प्राप्त करके ऊपर की श्रेणी में जाने की जो चर्चा की है, वह अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर की है। हमारे अपने सरगुजा संभाग की आबादी करीब 50–60 लाख हो सकती है। इस आबादी में 80 प्रतिशत से भी अधिक आबादी अवर्णो की है। अवर्ण अर्थात् आदिवासी, हरिजन। इन दस लाख परिवारों में से ऐसे दो तीन हजार अवर्ण परिवार भी नहीं होंगे जो सामान्य स्तर से ऊपर उठकर मध्यम या उच्च स्तर तक जा सके हों। मैंने जो तीन लाख परिवारों की संख्या दी है वह भी अधिक ही दिखती है, कम नहीं। कुल भारत में यदि दो करोड़ सरकारी कर्मचारी माने जायें तो उनमें बीस लाख करीब ही अवर्ण होंगे। इनमें से भी द्वितीय श्रेणी और प्रथम श्रेणी में तो कुल मिलाकर एक लाख ही लोग संभव है। इनमें भी आधे से अधिक पूर्व में ही लाभ प्राप्त कर चुके परिवारों से जुड़े हैं। इस आधार पर ही मैंने अनुमानित आंकड़े दिये हैं। यदि कोई गलती हो गई तो मैं सुधार करुॅगा। मैंने धूर्त शब्द का उपयोग किया क्योकि मंजुल जी ने फोन पर मेरे इन्कार करने के बाद भी अपने पत्र को छापने के लिए जितना जोरदार दबाव बनाया था इसके कारण मैं आंशिक रुप से प्रतिक्रिया में था। मैं मानता हूॅ कि जिस तरह मंजुल जी का काम उन अनावश्यक शब्दों के उपयोग के बिना चल सकता था उसी तरह मेरा भी काम बिना इस शब्द के चल सकता था। किन्तु मैं अब भी इस धूर्त शब्द के उस उपयोग पर कायम हूॅ जो स्वतंत्रता के पूर्व कुछ सवर्ण बुद्धिजीवियों ने आरक्षण के पक्ष में उपयोग किया था तथा वर्तमान में भी कुछ अवर्ण बुद्धिजीवी आरक्षण के पक्ष में उपयोग करते हैं। आरक्षण समाप्त होना ही चाहिए किन्तु वह अवर्ण सवर्ण बुद्धिजीवियों के बीच का मामला न बनकर बुद्धिजीवियों श्रमजीवियों के बीच का विवाद बनना चाहिए।

मैंने विवेकानंद माथने का एक सुविचारित लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने सुझाव दिया है कि शासन द्वारा प्राप्त अनाप शनाप वेतन और सुविधाएॅ अन्यायपूर्ण हैं तथा अनेक समस्याओं का विस्तार करने वाली हैं। मुझे उनका लेख पसंद आया। यदि आरक्षण का लाभ उठाकर औसत और योग्यता से अधिक वेतन, अधिकार, सुविधा, सम्मान पाने की इच्छा में यदि कमी हो जाये तो आरक्षण का विवाद अपने आप बेमौत मर जायेगा। सारी छीनाझपटी तो उस लूट के माल के लिये है जो स्वतंत्रता के पूर्व मुट्ठीभर सवर्ण बुद्धिजीवी प्राप्त कर रहे थे और अब उस लूट के माल में कुछ प्रतिशत अवर्ण बुद्धिजीवियों का भी हिस्सा हो गया है। लूट के माल का बटवारा कैसे हो इसका न्यायसंगत समाधान खोजने की माथापच्ची में तामगाडगे जी और मंजुल जी दिमाग खपा रहे है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस माल का एकत्रीकरण ही कम हो जाये। यदि अधिकार, वेतन, सुविधा का एक जगह एकत्रीकरण कम हो जायेगा तो यह विवाद समाप्त हो जायेगा।

6.हरिचरण सिंघल,मालवीयनगर,जयपुर,राजस्थान ज्ञानतत्व –754199

प्रश्नः–आपने ज्ञानतत्व 324 में ग्राम सभा की महत्वता पर प्रकाश डाला है। आप सदैव जनता द्वारा शासन व्यवस्था के हामी रहे है, लेकिन मेरी जिज्ञासा और आशंका यह है कि ग्राम सभा या ग्राम के लोग क्या कोई व्यवस्था दे सकते है? निष्पक्ष निर्णय ले सकते है? शासन कर सकते है? ग्राम स्तर पर कितनी राजनीति ग्रुपबाजी है? वह लोक निर्माण आधारित व्यवस्था नहीं बना सकते। पहिले पंचायतें हुआ करती थीं और उनके निर्णयों को समाज के लोग मानते थे। वे पंच निष्पक्ष होते थे। मुझे नहीं लगता कि जब तक व्यक्ति जीवन मूल्यों से ओत प्रोत नहीं हो, वह कुछ कर पायेगा।

उत्तरः–ग्राम सभा में सब बराबर होते है तो कौन शासक होगा और कैसे शासन करेगा यह प्रश्न ही अनावश्यक है। मुझे लगता है कि आप ग्राम सभा और ग्राम पंचायत को अलग–अलग नहीं समझ रहे है, जबकि दोनों अलग–अलग हैं। ग्राम पंचायत शासन का प्रतिनिधित्व करती है और ग्राम सभा समाज का। ग्राम पंचायत को शासन अधिकार देता है जबकि ग्राम सभा स्वतः अधिकार सम्पन्न है। ग्राम पंचायत पॉच वर्ष बाद बदली जाती है किन्तु ग्राम सभा शाश्वत है और कभी भंग नहीं होती। प्रश्न उठता है कि ग्राम सभा स्वतः ही मालिक भी है और स्वतः ही उपभोक्ता भी। तो ग्राम सभा जब अपने लिए ही व्यवस्था करने को बाध्य है तो मैं नहीं समझा कि ग्राम सभा में गुटबाजी कैसे होगी। गुटबाजी तो तब होती है जब कोई एक व्यवस्थापक हो और दूसरे के लिए व्यवस्था करता हो। जब चुनी हुई ग्राम पंचायत को ग्राम सभा अधिकार देगी तब कैसी गुटबाजी। वर्तमान समय में पक्षपात या भ्रष्टाचार का कारण यह है कि ग्राम पंचायते सरकार से अधिकार लेती है और ग्राम पर शासन करती है। नई व्यवस्था में ऐसा नहीं होगा।

7.रमेशचन्द्र वर्मा, उज्जैन ज्ञानतत्व–630062

प्रश्नः–मैं ज्ञानतत्व का विगत 6 वर्ष से पाठक हूॅ। ज्ञानतत्व में आपके एवं अन्य पाठकों के विचार व जिज्ञासा अपने आप में मौलिक है। मौलिकता, तटस्थता, एवं मानव स्वभाव की स्वाभाविक मूल प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुये उनका समाधान श्रेष्ठ तरीकों के द्वारा किया जाना ही उसका हल है। समाज के धूर्त लोगों ने समाज को विघटित किया है। किसी भी समस्या को हल करते समय दूसरी समस्या स्वतः उत्पन्न हो जावे इसी प्रकार के हल सुझाये हैं।

यथा दहेज समस्या, बेटी को पिता की सम्पत्ति में अधिकार हो या वैश्यावृत्ति उन्मुलन, भ्रूण हत्या हो अथवा आरक्षण, सभी समस्याओं को सुलझाने की जगह उलझाने के प्रयत्न हैं।

ग्राम सभा सशक्तिकरण परिवार की इकाई के रुप में मान्य करना, कृत्रिम उर्जा पर और टैक्स लगाया जाना, राइट टू रिकाल, गरीब, ग्रामीण एवं श्रमजीवी के उत्पादन व उपभोग की सामग्री को कर मुक्त किये जाने का मैं प्रबल समर्थक हूॅ।

अंक 325 के माध्यम से साहित्यकार एवं विचारक का अन्तर जानकर प्रसन्नता होती है और विचार के प्रति सम्मान भावना में वृद्धि होती है। साम्यवादी वास्तव में पूंजीपतियों के इशारे पर आन्दोलन कर देश के विकास में बाधक हैं, आपकी यह बात भी सत्य है।

मैं लम्बे समय से आपको पत्र लिखना चाहता था। मैं विगत 40 वर्षो से मालवांचल के कभी छोटे–छोटे ग्रामों में कार्यरत रहा हूॅ और मैंने पाया कि ग्राम सभा के सशक्तिकरण का लाभ ग्राम जन नहीं। ले पा रहे है। शायद उसके पीछे उनका अल्प सोच तात्कालिक लाभ, दबाव अथवा अन्य कोई कारण हो सकता है। मुझे तो इसके पीछे उनमें सोंच, विचार का अभाव व लालच ही समझ आता है। लगता है आपके विचारों व सोच को इन लोगों तक पहुॅचाने की अति आवश्यकता है और यह भी तभी संभव है जबकि तहसील व ग्राम स्तर तक की शक्तियॉ पूर्ण सक्रियता से बैठक, मीटिंग एवं अन्य गतिविधियों द्वारा उन्हें अवगत करावे। अन्यथा आपके सुविचार मात्र कुछ पाठकों तक सीमित रह जायेंगे।

कृपया जिला एवं तहसील स्तर की कार्यकारिणी सदस्यों को सक्रियता से समाज के प्रति अपना दायित्व निर्वहन की प्रेरणा दे दें। उज्जैन शहर में लम्बें समय से कार्य बैठक नहीं हो पायी है। श्री कुलश्रेष्ठ, श्री पौराणिक जी, श्री जैन व जोशी जी को अवगत करावें।

उत्तरः–समाज के लोग अधिक भ्रष्ट हैं या ईमानदार यह कहना कठिन है। जब सरकार के किसी मामले में कुछ करना हो तो भारत का हर आदमी भ्रष्ट है। दूसरी ओर यदि धार्मिक, सामाजिक, मामले से संबंधित कोई बात हो तो भारत का हर आदमी लगभग ईमानदार है। प्रश्न उठता है कि हम उसे भ्रष्ट कहें या ईमानदार। सरकार के इनकम टैक्स से करोड़ों रुपए चोरी करने वाला व्यापारी दूसरी ओर करोड़ों रुपए मंदिर में स्वेच्छा से दान कर देता है। उसे

स्वार्थी कहे या दानी। मैं समझता हूँ कि लोगों को ईमानदारी और स्वार्थ मुक्ति की ट्रेनिंग देने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम लोगों के दैनिक व्यवहार में सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम कर दे और उनके दैनिक क्रियाकलापों को सामाजिक हो जाने दे तो वे अपने आप ईमानदार है। आज गॉवों में जो कुछ कमियॉ दिख रही है उनका कारण सिर्फ यह है कि हमने उन लोगों को अपने विषय में कुछ सोचने करने या परिणाम भुगतने की स्वतंत्रता नहीं दी। एक बार उन्हें स्वतंत्रता देकर देखिये तो आप पायेंगे कि वे लोग ट्रेनिंग देने वालों की अपेक्षा कुछ अधिक ही टेंड दिखेंगे। हमारे ब्लॉक के आसपास की 90 प्रतिशत आबादी गरीब है, अपण है, शराबी है, ईमानदार है, सच बोलने वाले है, दूसरों से मानवता का व्यवहार करते है। उन्हें हम लोग पिछड़ा कहकर सारा अधिकार अपने पास रखना चाहते है अच्छा होगा कि उनके अधिकार उन्हें दे दिये जाये और दूसरे लोग बीच से हट जाये। जब सब लोग समान होंगे, अपराधियों को छोड़कर अन्य मामलों में न कोई शासक होगा न कोई शासित, अपने किये हुए कार्यो का अच्छा या बुरा परिणाम स्वयं ही भोगना होगा तो अपने आप सबकी ट्रेनिंग हो जायेगी। वर्तमान समय में हम सबकी भूमिका यह होनी चाहिए कि राज्य की भूमिका समाज पर शासक की न होकर प्रबंधक तक सीमित हो। इसके लिए जनजागरण की योजना बन रही है। शीघ्र ही आपसे भी सम्पर्क किया जायेगा।

8.श्री कृष्णचंद सहाय,स्वतंत्रता सेनानी,जयपुर,राजस्थान ज्ञानतत्व–754012

प्रश्नः–अंक 323 ज्ञानतत्व मिला। स्वास्थ्य के कारण 2, 3 अक्टूबर 2015 को दिल्ली नहीं आ सका अन्यथा लाभ ही होता। पूरा अंक गौर से पढ़ गया कुछ विचार तो आपके इतने पक्के हैं जो शायद जीवन के अंतिम रुप तक रहेंगे। महंगाई, दहेज, महिलाओं तवायफों आदि पर। मेरी शादी 1959 में 26 जनवरी को हुई थी 100रु मासिक सहायता मिलती थी। उसमें 20 रुपया दान करता था 80 रु में अपनी घी दूध मेवे भरपूर सब्जी दाल आदि खाता था। लेकिन अब मासिक 10000 मिलता है और अकेला हूँ फिर भी महॅगाई के कारण वह आनंद नहीं उठा पा रहा हूँ जो 80 रु में उठाता था। बुद्धि जीवी विचार प्रस्तुत करता है, व्यावहारिक जीवन नहीं जानता है। इसलिए विनोबा ने कहा कि मैं प्लानिंग कमीशन की बैठक में आ रहा हूँ पैदल चल कर। तब पता चलेगा कि जनता की क्या परेशानी है।

फिर भी मेरे मन में आपके प्रति आदर और सम्मान भाव है। दो तीन बातों की असहमति को लेकर आपको छोड़ दूँ तो अपने ऊपर अन्याय करुँगा क्योंकि 80 प्रतिशत विचारों को मैं सही मानता हूँ इसी कारण में आपसे जुड़ा हूँ। और कभी–कभी फोन भी करता हूँ। कभी अवसर मिला तो आपके किसी शिविर में जरुर आऊँगा। स्वास्थ्य के कारण रामानुजगंज में नहीं बैठ सका जो संकल्प जाहिर किया था ।

उत्तरः–1959 में आपको 80 रु. वेतन मिलता था। और आज आपको मासिक 10000 रु. प्राप्त हो जाता हैं। उस समय आप सुखी थे और आज नहीं। यह बात सच होते हुए भी गलत है। मैं एक लड़के को जानता हूँ जो पहले प्राथमिक शाला में शिक्षक था और मामूली वेतन पर प्रसन्न था। आज वह विधायक बनते बनते मंत्री भी बन गया किन्तु वह आर्थिक दृष्टि से आज भी बहुत परेशान है। बताइए मैं क्या कहूँ। आप एक सूची बनाइये कि उस समय 80 रु. में आप कुल मिलाकर क्या–क्या वस्तुए किस मात्रा में लेते थे और खर्च करते थे। आज आपको वे सभी वस्तुए उससे अधिक मात्रा में मिल पाती है या नहीं। आपको यह भी समझना होगा कि उस समय आप मोबाइल फोन पर क्या खर्च करते थे, यात्रा पर क्या खर्च करते थे, और दवाईयों पर क्या खर्च करते थे। यदि आज आपके खर्च के क्षेत्र बदल गये है तो अंतर तो दिखेगा ही और घी तेल की क्वालिटी या मात्रा खराब होगी ही। उस समय औसत उम्र 60 वर्ष थी और आज 80 है। इसके पीछे स्वास्थ्य संबंधी बढ़ा हुआ खर्च शामिल है। दूसरी ओर वातावरण प्रदूषित हो गया है, आवागमन बढ़ गया है, इच्छाएँ बहुत बढ़ गई है तो हम सब बातों पर विचार न करके महंगाई चिल्लाने का एक बहाना ढूंढ लें यह ठीक नहीं। मैं चाहता हूँ कि आप या कोई अन्य पाठक 1959 के 100रु. में किये जा रहे खर्च का विवरण भेजे और आज उतने ही सामान का मुल्यांकन करें। कि वह 10000 रूपए में कम होता है या अधिक। तब मैं इस विषय पर और विचार करुँगा। उस समय आपको शुद्ध घी, तेल में आनंद आता था और आज यात्रा में अधिक आनंद आता है तो इसके लिए महंगाई का बहाना क्यों?

9.रमेश कुमार धर्मजीत मिश्र,टीकमगढ़ म0प्र0 ज्ञानतत्व–644060

प्रश्नः–1. म0प्र0 के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान पर भ्रष्टाचार से संबंधित व्यापम घोटाले के आरोप लग रहे है। ऐसे में सी.बी.आइ रिपोर्ट आना शेष है। पर म0प्र0 की जनता में उनकी साख प्रतिदिन घट रही हैं। जनता का विश्वास उन पर से उठ रहा है। ऐसे में उन्हें नैतिक आधार पर इस्तीफा दे देना चाहिए या लालू, मुलायम की तरह कुर्सी से चिपके रहना चाहिए? आप का क्या विचार है।

2. हिन्दू मंदिरों को किसी भी राज्य सरकार ने न तो कभी एक इंच जमीन दान में दी न ही एक पैसा कभी हिन्दू मठ मंदिर के निर्माण या मरम्मत के लिए दिया। जबकि राज्य सरकारें सभी हिन्दू मठ मंदिरों पर प्रबंधक के रुप में कलेक्टर नियुक्त करा रहीं है जबकि सर्वोत्तम न्यायालय नई दिल्ली ने इसे अनुचित ठहराया है। फिर भी राज्य सरकार हिन्दू मठ मंदिरों से प्राप्त धन अन्य मदों पर खर्च रही है। जबकि ईसाई चर्च या मुस्लिम मस्जिदों पर उनका कोई अधिकार नहीं। आप अपने विचार व्यक्त करें।

उत्तरः—1.वर्तमान समय में राजनीति और नैतिकता का आपस में कोई संबंध नहीं है। न तो यह स्पष्ट है कि आरोप लगाने वालों का उद्देश्य नैतिक है न ही जिन पर आरोप लग रहा है वे कोई सिद्ध पुरुष हैं। एक प्रश्न और उठता है कि शिवराज सिंह चौहान लालू, मुलायम की अपेक्षा अच्छे लोगों में माने जाते है। ये हमारी दृष्टि में उन तेरह लोगों में शामिल है जिन्हें राजनीति में अपेक्षाकृत कुछ अच्छा माना जाता है। प्रश्न उठता है कि शिवराज सिंह पर आरोप लगाने वाले कितने अच्छे लोग हैं। क्या तेरह अच्छे लोगों में से किसी ने कोई आरोप लगाया है? यदि इसी तरह आरोप लगाने पर राजनेता नैतिकता मानकर त्याग पत्र देने लगे तो एक भी अच्छा आदमी वहॉ नहीं बचेगा। मेरा विचार है कि शिवराज सिंह को भी कानूनी आधार पर ही निर्णय करना चाहिए। अभी नैतिक आधार पर निर्णय करने का समय नहीं आया है।

2. नरेन्द्र मोदी के आने के पूर्व तक कोई ऐसी सरकार बनी ही नहीं थी जिनसे हिन्दू सस्थाओं को कोई सहायता मिलती। मेरी व्यक्तिगत जानकारी के अनुसार मोदी सरकार आने के बाद हिन्दू संगठनों में भी सहायता लेने देने की होड़ मची है। तीर्थ यात्राओं के लिए धन दिया जा रहा है, शिशु मंदिरों के लिए भी जमीन या पैसा दिया जा रहा है। अभी तो एक डेढ़ वर्ष ही हुआ है। कुछ दिन और देख लीजिए कि आगे क्या—क्या होता है। मेरा अपना विचार यह है कि राज्य को धर्म से बिल्कुल अलग रहना चाहिए। जो कांग्रेस के टाईम में हो रहा था वह भी गलत था और जो अब हो रहा है वह भी गलत है। धर्म स्थान बिल्कुल स्वतंत्र रहने चाहिए चाहे वे किसी के भी क्यों न हों।

10.योगिन गुर्जर,सोलापुर,महाराष्ट्र ज्ञानतत्व—740061

प्रश्नः—ज्ञानतत्व क्र0 323 पढ़ा। बहुत ही गहन विचारों के बाद आपने लिखा है। इस देश के 70 प्रतिशत लोगों का न्यायसंस्था पर बिल्कुल भरोसा ही नहीं है, ऐसा एक सर्वे कहता है। देश की न्याय व्यवस्था अपराधी को छुपाने के लिए ही कार्यरत रहती है। पीड़ित को न्याय तो मिलता ही नहीं। सजा देते वक्त तोला, मासा, रत्ती तक का हिसाब लगाती है। 100 अपराधी छुटे तो चलेगा, मगर एक निरपराध को सजा न हो इस तत्व पर न्यायदान काम चलता है। वास्तविक में एक भी अपराधी ना छूटे और एक भी निरपराध को सजा न हो इस तरह न्याय व्यवस्था बनानी चाहिए। महत्वपूर्ण बात न्याय संस्था का औडिट होना चाहिए।

उत्तरः—यह सही है कि न्याय व्यवस्था पर मैंने जो बड़ा लेख लिखा है वह काफी लम्बे समय तक चिंतन मनन का परिणाम है। यह न्याय व्यवस्था पश्चिम के देशों के लिए तो उपयुक्त है जहॉ अपराध बहुत कम होते है। किन्तु भारत की स्थिति उसके ठीक विपरीत है। भारत में आमतौर पर कानून व्यवस्था को स्वीकार कराने की पहली आवश्यकता है। पश्चिम की न्याय व्यवस्था इस सिद्धांत पर चलती है कि चाहे 100 अपराधी भले ही छूट जाये किन्तु एक भी निरपराध दण्डित नहीं होना चाहिए। साम्यवादी तथा इस्लामिक देशों की व्यवस्था में चाहे 100 निरपराध भले ही दण्ड पा जाये किन्तु एक भी अपराधी नहीं बचना चाहिए। भारत न तो तानाशाह देश है न ही भारत ने अभी तक जीवन पद्धति का लोकतंत्र स्वीकार किया है। भारत लोकतंत्र में जीना सीख रहा है। ऐसी स्थिति में पश्चिम की न्याय व्यवस्था अव्यवस्था के विस्तार में सहायक होती है। इसलिए से सहमत हूॅ कि न्याय व्यवस्था में ऐसा सुधार होना चाहिए कि न तो कोई अपराधी छूटे न ही कोई निरपराध दण्डित हो। न्याय व्यवस्था का औडिट होना चाहिए, या नहीं इस स्थिति में मैं अभी कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूॅ।

11.मुकेश कुमार, ऋषिवर्मा आगरा उत्तर प्रदेश, ज्ञानतत्व123042

प्रश्नः—आपने गॉधी के विषय में लिखा। मैं न तो गॉधी भक्त हूॅ न ही गॉधी से नफरत करता हूॅ। किन्तु मैं गॉधीवादियों से बहुत नफरत करता हूॅ क्योंकि गॉधी भक्तों ने भारत की जो दुर्दशा की है उसे भगत सिंह के दीवाने कभी भुला नहीं पायेंगे।

उत्तरः—मैं न गॉधी भक्त हूॅ न ही भगत सिंह का दीवाना। स्वतंत्रता संघर्ष में दोनों का दो विपरीत दिशाओं में चलकर भी सम्मलित प्रयास रहा है। किन्तु मैं मानता हूॅ कि स्वतंत्रता के बाद अब किसी भी रुप में सामाजिक हिंसा के समर्थन का कोई औचित्य नहीं है। यदि भगत सिंह भी जीवित रहते तो आज वहीं कहते जो मैं कह रहा हूॅ। मेरा मानना है कि मृत महापुरुषों के विचार बिना स्वयं विचार मंथन किये अक्षरशः कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए। यदि कोई आज बिना सोचे समझे गॉधी का अनुयायी है या भगत सिंह का दीवाना है तो मैं दोनों को गलत मानता हूॅ।

12.बेचू बीए, कप्तानगंज ,उ0प्र0 ज्ञानतत्व—137065

प्रश्नः— लगभग 68 वर्षो में जो भी सरकारे आयी, सभी ने सभी वर्गो के, खास कर कृषि प्रधान देश के बेबस किसानों की व्यथा को चिन्हित किया और इनके जख्मों पर एसिड राजनीति कर और घायल करने का जमकर प्रयास किया। क्या यह वही भारत है जहॉ कभी जय जवान जय किसान का नारा किया राजनेता ने दिया था। आज भारत जहॉ आतंकवाद, जातिवाद, नक्सलवाद और तमाम वादों से जंग लड़ रहा है तो वहीं एक समस्या किसान से भी देश शर्मसार हो रहा है।

आज देश के सबसे ज्यादा आबादी वाले प्रान्तों को टटोलें तो उ0प्र0 व महाराष्ट्र में जिस तरह से किसान मर्माहत हैं, उसे लेकर सैकड़ों किसान आत्महत्या कर लिए। एक आंकड़ा पर गौर करें तो भारत में हर आधे घण्टे में एक किसान खुदकुशी कर रहा होता है। वर्ष 2001 से 2011 की जनगणना के बीच देश में 77 लाख किसान कम हो गये। महाराष्ट्र पर नजर डालें तो जनवरी से मार्च 2015 तक 601 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। वहीं कमोवेश उ0प्र0 में महज तीन किसानों के आत्महत्या की बात सदन में कहते हैं। एक और आंकड़ा पर नजर गड़ाएं तो 1995 के बाद पन्द्रह साल में 2 लाख 56 हजार 946 किसानों ने आत्महत्या की। एन0 सी0 आर0 बी0 के रेकार्ड के मुताबिक देश में 1997 से 2003 के बीच औसतन 16 हजार 267 किसानों ने प्रतिवर्ष और कुल 1,13,872 किसानों ने सुसाइड किया। इस गम्भीर समस्या पर देश के लोग सिर्फ ए0सी0 में बैठ कर किसानों को मरहम की जगह पर नमक छिड़कने का काम किया, और फिर किसानों के खुरदुरें हाथों पर मुआवजे के नाम पर 75 रु से हजार रु का चेक थमा दिया। यह किसानों के साथ अन्याय है कि नहीं?

आप हर क्षेत्र की समस्याओं के चिंतन पर पारंगत हासिल किए है। किसानों पर यह ज्यादती कहॉ तक न्याय संगत है? कृपया अपने अमूल्य विचार हमें ही नहीं उन विकलांग बने राजनीतिज्ञों को भी दे जो अब तक इन किसानों के पेट न व खेतों पर घृणित राजनीति करते आए है।

उत्तरः—आपने किसानों की आत्महत्या की जो विवेचना की है वह असत्य नहीं है। किन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी है कि किसानों की संख्या घट रही है और कृषि उत्पादन बढ़ रहा है। समझ में नहीं आता कि ये दोनों बाते एक साथ कैसे हैं। मैंने बहुत विचार किया तो मैंने यह पाया कि भारत के हर क्षेत्र में केन्द्रियकरण हो रहा है अर्थात् छोटे लोग परेशान हो रहे हैं और बड़े लोग लाभदायक स्थिति में हैं। छोटे—छोटे व्यापारी या तो अपना व्यापार बदल रहे है या आत्महत्या कर रहे हैं। गॉव के लोग अपना गॉव छोड़—छोड़ कर शहरों में जा रहे है, और उनमें भी अनेक यहॉ नारकीय जीवन जी रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसानों के सामने भी साफ मार्ग है कि वे खेती में या तो बड़े लोगों से प्रतिस्पर्धा करें या खेती छोड़कर दूसरे काम करें। किसान को मजदूरी करने में लाभ ज्यादा है किन्तु उसे किसान कहकर मजदूरी करने से निरुत्साहित किया जा रहा है। वह बेचारा मजदूरी कर नहीं सकता, और खेती में कोई फायदा नहीं है। परिणाम स्वरुप वह आत्महत्या करता है। मैं समझ नहीं पा रहा कि जब देश में कई करोड़ लोग मजदूरी करने के बाद भी और भूमिहीन रहने के बाद भी आत्महत्या नहीं कर रहे तो क्या कारण है कि किसान आत्महत्या कर रहा है, जिसके पास मजदूरी करने लायक शरीर भी है और उसके साथ—साथ छोटी मोटी पूॅजी भी है जो जमीन के रुप में है। मुझे तो ऐसा लगता है कि किसानों के पक्ष में ऑसू बहाने वाले गैर किसान आत्महत्या के लिए ज्यादा जिम्मेदार हैं। यदि किसानों को थोड़ी सहायता देकर नहीं रखा जाता जो वे पहले ही जमीन बेचकर या खेती छोड़कर मजदूरी करना और पेट भरना शुरु कर देते। बड़े किसानों से प्रतिस्पर्धा छोटे किसान कर नहीं पायेंगे और सरकार उन्हें धन देकर उस स्थिति तक जिंदा न रख पायेगी न रखना उचित है। अतः वास्तविक परिस्थितियों को समझकर किसानों को यह बताने की आश्यकता है कि अपने किसान होने की श्रेष्ठता का भाव छोड़कर वास्तविक धरातल पर जीने की आदत डाले।

मैंने भी सन् 65 से 95 तक 30 वर्ष खेती किसानी में खूब मेहनत की है। जब मैं और मेरा परिवार भूखों मरने की स्थिति में आ गया तब मैंने खेती को तिलांजलि दे कर अन्य व्यवसाय शुरु किया। मैं समझता हूॅ कि यदि मैंने अपना अहंकार नहीं छोड़ा होता तो मैं भी आज जीवित नहीं दिखता। आत्महत्या करता या भूख से मरता। मेरी

आपको सलाह है कि छोटे किसानों को अपना व्यवसाय बदलने की दिशा में प्रेरित करिये न कि उन्हें सरकारी जूठन पर जिदां रहने की सलाह या आश्वासन दीजिए।